

# संस्कृत के बहुआयामी पक्ष

(Multidimensional Aspects of Sanskrit)

सम्पादक

प्रो. गिरिश चन्द्र पंत

आचार्य एवं पूर्वअध्यक्ष संस्कृत विभाग

सह सम्पादक

डॉ. धनञ्जय मणि त्रिपाठी

सहायक आचार्य संस्कृत विभाग

जामिया मिल्लिया इस्लामिया

(केन्द्रीय विश्वविधालय)

नई दिल्ली



प्रकाशक

इन्दु प्रकाशन

दिल्ली-भोपाल

© : प्रकाशक

सम्पादक : प्रो. गिरिश चन्द पंत

सह सम्पादक : डॉ. धनञ्जय मणि त्रिपाठी

ISBN : 9788186863398

प्रथम संस्करण : 2023

मूल्य : 3500.00

प्रकाशन : इन्दु प्रकाशन,  
आकर्षण भवन, 23 अंसारी रोड़ दरियागंज नई दिल्ली-110002

फोन : 09818884003  
e-mail : indu\_prakashan17@yahoo.in

शाखा कार्यालय : दुकान नं. 26, सुभाष मार्किट बस स्टॉप नं. 6  
शिवाजी नगर भोपाल-462016  
9968536565

शब्द-संयोजन : श्रीओ३म् कम्प्यूटर्स, दिल्ली

मुद्रक : भारती प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

## अनुक्रमणिका

1. अथर्ववेद में कृमि विज्ञान-कु. सुदीप	1
2. वैदिक वाङ्मय में देवत्व की अवधारणा-शुभदीप घोष	17
3. पुरातत्त्व नृतत्वशास्त्र एवं आनुवांशिकता के वैदिक एवं पौराणिक स्रोत-भुवनेश भारद्वाज	26
4. वैदिक वाङ्मय में देवता विषयक समीक्षा-सोमवीर	34
5. वैदिक परिप्रेक्ष्य में पर्यावरणीय चिंतन एवं समाधान-डॉ. शालिनी साहनी	41
6. ऋग्वेदीय 'पुरुवा-उर्वशी' सम्वाद सूक्त : वर्तमान सामाजिक संदर्भ-डॉ. आशुतोष पारिक	46
7. वैदिक संस्कृति में सामाजिक व्यवस्था-भारद्वाज बर्गाए	52
8. वैदिक वाङ्मय में देव स्वरूप निरूपण-हर्षा कुमारी	59
9. संस्कृत वाङ्मय में निहित वैज्ञानिक उत्कर्ष-सुजाता यादव	64
10. संस्कृत की बौद्धिक सहिष्णुता का वैश्वत परिदृश्य-डॉ. प्रीति कमल	71
11. निरुक्त की दृष्टि में देवता तत्त्व-प्रवीण कुमार	78
12. ई-कार्पोरा निर्माण : हिन्दी-संस्कृत अनुवाद के विशेष संदर्भ में-डॉ. कु. अर्चना देवी	83
13. संस्कृत तथा फारसी में नामपदगत साम्य-मोहित कुमार मिश्र	92
14. सिंहल भाषायां विद्यमान संस्कृत भाषा प्रयोगानि-एरुववे ग्रामे	101
15. अनल्विधौ इति निषेधांशसमीक्षणम्-डॉ. गजाननधरेन्द्रः	105
16. द्राविडभाषाकुटुम्बीय तेलुगुभाषायां संस्कृतस्य प्रभावः -डॉ. एम. कृष्ण	109
17. पंजाबीभाषायः परिरक्षणे परिसंवर्धने च संस्कृतस्यावदानम्-डॉ. पुष्पेन्द्र जोशी	116
18. पर्यावरणस्य वैदिकावधारणा संधारणीयविकासश्च-रूपलालशर्मा (शोधध्येता)	129
19. महाभारत के परिप्रेक्ष्य में अधुनातन आर्थिक समस्याओं का निदान-डॉ. जहाँ आरा	137
20. सामाजिक परिप्रेक्ष्य में रामायणोक्त उपदेश-डॉ. दीप लता	144
21. रामायण में वर्णित धर्म का स्वरूप-रचना रस्तोगी	150
22. याज्ञवल्क्यस्मृति के अन्तर्गत प्रकीर्णक प्रकरण तथा ऋणादान प्रकरण पर विचार-पंकज शर्मा	157
23. संस्कृत ग्रन्थों में धर्म की अवधारणा	164

#### xiv संस्कृत के बहुआयामी पक्ष

24. कौटिल्य अर्थशास्त्र में सामाजिक प्रबन्धन-आलोक कुमार झा	175
25. कौटिल्य अर्थशास्त्र में आर्थिक प्रबन्धन-डॉ. राजेश कुमार	179
26. शीर्षक-अन्तर्राज्यीय राजनीति के सम्बन्ध में आचार्य कौटिल्य के विचार-नीटूदत्त नौटियाल	190
27. कौटिल्य अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों पर याज्ञवल्क्यस्मृति का प्रभाव-डॉ. इशरत सुल्ताना	199
28. वास्तुशास्त्र का वैज्ञानिक पक्ष-प्रिया कौशिक	206
29. जैन ज्योतिष में प्रतिपादित वृष्टि विज्ञान-डॉ. प्रियंका जैन	213
30. वैमानिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में विमान-चालन के रहस्य-डॉ. अनिता सेन गुप्ता	217
31. भूकंप पूर्वानुमान और ज्योतिर्विज्ञान-डॉ. सुनयना भाटी	223
32. भीमाशङ्कर ज्योतिर्लिङ्ग मंदिर की वास्तुकला-डॉ. रमण कुमार	228
33. नालन्दा के अभिलेखों में प्रतिबिम्बित संस्कृति-डॉ. देवेन्द्र नाथ ओझा	231
34. कालिदास के साहित्य में जैव विविधता संरक्षण-डॉ. कल्पना कुमारी	235
35. आयुर्वेद में पर्यावरण की अवधारणा-शिखा	238
36. वर्तमान युग में आयुर्वेद-शास्त्र की उपयोगिता-डॉ. ललिता जुनेजा	245
37. वेदाङ्गज्योतिषपरम्परा-श्रीकृष्ण कुमार मिश्र	251
38. अग्निपुराणे भूतविद्यायाः स्वरूपम्-नन्दिनी दास	256
39. योगोपनिषत्सु वर्णितानां मुद्राणां विवेचनम्-आशीष मौद्गिल	263
40. संस्कृतवाङ्मये यन्त्रविज्ञानम्-अंकुश कुमार	273
41. शाब्दबोधे आकाङ्क्षास्वरूपविचारः - श्याम सुन्दर शर्मा	286
42. न्यायनये प्रत्यक्षप्रमाणान्तर्गते प्रत्यासत्तिनिरूपणम्-अपूर्वा भारद्वाजः	290
43. न्यायाभिमताख्यातेः समीक्षात्मकमध्ययनम्-यशवन्तकुमारीत्रिवेदी	298
44. प्रामाण्यवादविषयक सांख्य व न्याय सिद्धान्तों की समीक्षा-डॉ. ठाकुर शिवलोकचन शाण्डिल्य	302
45. दार्शनिक सिद्धान्तों में निहित वैज्ञानिक नियम : एक समीक्षात्मक अध्ययन-डॉ. श्रुतिकान्त पाण्डेय	309
46. अद्वैतवेदान्त में आभासवाद की अवधारणा-दीप्ति सिंह	316
47. 'आख्यात-शक्ति न्याय एवं व्याकरण के परिप्रेक्ष्य में'-शोधच्छात्रा, प्रज्ञा	322
48. समाधि तथा योग-डॉ. कामिनी कुमारी	329
49. सांख्य-योग दर्शन में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों के लिए ई-कोश एवं ऑनलाइन खोज-अंजू	337
50. स्याद्वाद विमर्श (पं. मधुसूदन ओझा के चिन्तन के विशिष्ट सन्दर्भ में)-डॉ. चन्दा कुमारी	344
51. पातंजलयोग एवं अरविन्दो योग में साधना पद्धति-ध्रुव कुमार उपाध्याय	353



52. महर्षि पतंजलि द्वारा प्रदत्त अष्टांग योग की वर्तमान समय में प्रासंगिकता/उपादेयता-मीना डॉ. श्रीमती गीता परिहार	360
53. विवाद एवं प्रतिवाद का वाद चार्वाक-पंकज कुमार मिश्र	365
54. प्राभाकर-मीमांसा में ज्ञान का स्वरूप-अपर्णा चौधरी	371
55. "विभिन्न दार्शनिक परम्पराओं में कर्मसिद्धान्त निरूपण"-ज्योत्सना	377
56. भारतीय दर्शन में स्वामी विवेकानन्द का सामाजिक एवं आर्थिक दर्शन-हरीश बहुगुणा	382
57. साहित्यशास्त्र के सम्प्रदायों के विभाजन का आधार-प्रो० गिरीश चन्द्र पन्त	387
58. चित्रबन्धों की उत्तमकाव्यता-डॉ० जयप्रकाश नारायण	393
59. भारतीय रंगमंच और सिनेमा-डॉ. रूबी	401
60. अथर्ववेदीय मन्त्रों में औषधि विज्ञान-डॉ. तारेश कुमार शर्मा	406
61. शास्त्रकाव्य रचना का अनुपम उदाहरण अलिविलासिसंलापः -अंकित सिंह यादव	412
62. भारतीय नाट्यशास्त्र परम्परा, नाट्यधर्मी एवं लोकधर्मी प्रकृतियाँ-कृष्ण कुमार	420
63. अर्थोपक्षेपकों का चलचित्रों में अनुप्रयोग-डॉ. कल्पना शर्मा	425
64. संस्कृत नाट्यशास्त्र और भारतीय रंगमंच : कावालम नारायण पणिक्कर के विशेष सन्दर्भ में- डॉ. संगीता गुन्देचा	430
65. संस्कृत साहित्य में शक्ति-तत्त्व विमर्श (मार्कण्डेय पुराण के सन्दर्भ में)-अनुभा पाण्डेय	433
66. साहित्यशास्त्र एवं दर्शनशास्त्र का अन्तःसम्बन्ध (शब्द-शक्ति के सन्दर्भ में)-अशुतोष कुमार	436
67. जगदीश प्रसाद सेमवाल जी के 'स्वतन्त्र भारत विलास' में आधुनिकता विमर्श -सतीश नौटियाल	441
68. आधुनिक संस्कृत साहित्य में वैदेशिक छन्द विषयक नवाचार-शेषनाथ	447
67. महाकविभवभूतेः करुणरसस्य मनोवैज्ञानिक विश्लेषणम् (जेम्सलांजेकेननबर्डयोः सिद्धान्तमधिकृत्य) -पवन चन्द्र	456
68. '3 Idiot' इत्यस्मिन् सद्यः कालीनचलच्चित्रे नाट्यशास्त्रीयतत्त्वानुप्रयोगः-श्रीमती नमता पटेल	463
69. परशुरामोदयमहाकाव्यसन्देशः -गुरचरण सिंह	473
70. जातकमालायां श्लेषालङ्कारस्य विवेचनम्-ज्योतिकला द्विवेदी	482
71. वाल्मीकिरामायणे लोकोपयोगी-शिक्षा-डॉ. अनामिका त्रिपाठी	516
72. संस्कृत साहित्य के 'गालिब'-डॉ. जगन्नाथ पाठक-शहनाज कुरैशी	520
73. संस्कृत के प्रचार-प्रसार में सोशल मीडिया की भूमिका-निधिसोनी	524
74. शंकरदेव 'अवतरे' की रचना 'सीतारामीयम्' में नारी सीता?-हेमलता रानी	532

## Xvi संस्कृत के बहुआयामी पक्ष

75. आधुनिक संस्कृत साहित्य के नाट्यों में नायिका की अवधारणा-अनुपम कुमारी (शोधार्थी)	540
76. 'छत्रपतिसाम्राज्यम्' में समाज एवं संस्कृति-अनू कुमारी	546
77. आधुनिक संस्कृत साहित्य में आधुनिकता विमर्श-सिम्ली (शोधच्छात्रा)	553
78. शार्दूलशकटम् में छन्दोयोजना-डॉ. मैत्रेयी कुमारी	560
79. संस्कृत का वैज्ञानिक पक्ष आयुर्वेद के संदर्भ में-डॉ. मीनू वर्मा (प्रवक्ता)	570
80. भास के नाटकों में वर्णित विवाह-पद्धति-डॉ. वन्दना एस. भान	575

# जातकमालायां श्लेषालङ्कारस्य विवेचनम्

ज्योतिकला द्विवेदी

साहित्यशास्त्रस्य संस्कृतभाषोपरि आधिपत्यं दृश्यते। आदिकविवाल्मीकितः आधुनिकयुगपर्यन्तं संस्कृतसाहित्यस्याधिक्यं वर्तते। ये कवयः कमपि काव्यं रचयन्ति, ते सर्वे साहित्यशास्त्रमाधारीकृत्यैव स्वरचनां प्रस्तुवन्ति।

संस्कृतसाहित्यजगति महती काव्यपरम्परा विद्यते। तासु काव्यपरम्परासु रसः अलङ्कारः ध्वनिः गुणभूतव्यङ्ग्यः इत्येतेषां परम्परा प्रमुखा आसन्। बौद्धकवेरार्यशूरस्य रचनासु एतेषां साहित्यिकसन्दर्भानां बहुलतया उद्घोषोऽभवत्।

जातकमालायाः रचनावसरेऽपि कवेरार्यशूरस्य मनसि भगवतः बुद्धस्य जातककथाः आलोच्य रचयितुं धारणा विद्यते स्म। अत्र चतुस्त्रिंशज्जातका विद्यन्ते।<sup>1</sup> परन्तु जातकानां रचनावसरे कविरयं साहित्यतत्त्वान् आलोच्यैव ग्रन्थमिमं रचितवान्।

जातकमालायां ये चतुस्त्रिंशज्जातकाः दृश्यन्ते, ते सर्वे साहित्यिकाधारभूताः। कुत्र रसस्य प्रादुर्भावः कुत्रालङ्कारस्य प्रभावः सर्वोपरि सर्वतः दृश्यते। रहस्य मुख्यतया आविर्भावाः किमर्थं जातकः कथायां भवति, बोधिसत्त्वस्य भगवतः बुद्धस्य पूर्वजन्मकथा अत्र त्याग-निष्ठा-स्नेह-प्रेम-दयाप्रभृतिभावानां मार्मिकं परिशीलनमत्र दृश्यते।

श्लेषः—श्लेषालङ्कार भेदाः प्रमुखतया जातकमालायां दृश्यते न वा इत्यन्वेषणीयम्। श्लेषालङ्कारस्य लक्षणं यथा—

श्लिष्टै पदैरनेकार्थाऽभिधानं श्लेष इष्यते॥<sup>2</sup>

अर्थात् श्लिष्टैः पदैः नाम एक एव पदे अनेकार्थाभिधाने श्लेषालङ्कारो भवति। अपि च श्लिष्टैः...।<sup>3</sup>

वर्णपत्ययलिङ्गानां प्रकृत्योः पदयोः अपि।

श्लेषादिभक्तिवचनभाषाणां अष्टधा च सः॥<sup>4</sup>

अर्थात् वर्ण-प्रत्यय-लिङ्ग-प्रकृति-पद-विभक्ति-वचन-भाषा इति अष्टधा भेदमित्रः श्लेषो भवति। यथा—

स्थाने भक्तिवशेन गच्छति जनस्त्वत्कीर्तिवाचालताम्।

स्थाने श्रीः परिभूय पङ्कजवनं त्वत्संश्रयश्लाघिनी॥

व्यक्तं शक्रसनाथतामपि गता त्वदीये गुप्तामिमाम्।

द्यौ पश्यत्युदीप्तस्पृहा वसुमतीं नो चेदहो व श्रयते॥<sup>5</sup>

किं बहुना? श्लोकोऽयं श्लेषालङ्कारणे परिपूर्णाऽस्ति। अर्थात् जनः भक्तिवशेन त्वत्कीर्तिः वाचालतां गच्छति। अर्थात् भक्तिवशेन वशीभूतः जनः भवतः कीर्तिं सर्वेषु क्षेत्रेषु सुदूरं प्रसारमकरोत्। 'जनस्त्वत्कीर्तिः वाचालतां गच्छति' इत्यस्य स्पष्टीकरणे अर्थः एतादृशं भवति। यथा—



भवान् दिग्विजयी, चक्रवर्ती, तथा प्रजापालक इति। द्वितीयपादे “स्थाने श्रीः परिभूय पङ्कजवनं त्वत्संश्रयश्लाघिनी”। श्री पङ्कजवनं...।

अर्थात् लक्ष्मीः अपि पङ्कजवनं त्यक्त्वा भवता निकषा तिष्ठति। अपरेऽपि अर्थस्य एतादृशोऽपि अर्थः आगच्छति, यद् भवान् श्रीसम्पन्नाः पृथिव्यां सर्वेषु राजसु भवान् अपि समग्रश्रीसम्पन्नः लक्ष्मीसम्पन्नश्च।

त्रिभुवने भवत्सदृशं जनः देवो नास्त्येव। हूयं लक्ष्मीः त्वामाश्रित्य पङ्कजवनं परित्यज्यं तिष्ठति। सत्यमेतद् यद् आर्यशूरः यथैव कविरासीत्, तथैव तस्य रचनेयं सर्वान् जनान् आनन्दयति। तत्र नास्ति काश्चिद् विप्रतिपत्तिः, सन्देहो वा। अपि च—

व्यक्तं शक्रसनाथतामपि गता त्वद्वीये गुप्तामिमाम्।

द्यौ पश्यत्युदीप्तस्पृहा वसुमतीं नो चेदहो वञ्चयते॥

अर्थात् इन्द्रतुल्यः स्वामी प्राप्यामि (शक्रसनाथं) दिव्यभूमिं (स्वर्गं) यदि भवतः वीर्यात् स्थिता इयं वसुमति ईर्ष्यावशात् न पश्यति तर्हि अत्र सा अभागिनी नूनमेव वञ्चिता।

अर्थस्य स्पष्टीकरणार्थमेतदपि कथनं युक्तं समीचीनम्, यत्—

हे राजन! श्रीसम्पन्ना, भक्तिसम्पन्ना स्वर्गे मर्त्ये पाताले त्रिलोके भवतः कीर्तिराशिः विच्छुरिता। भवत्सदृशः राजा अत्र त्रिलोके नास्त्येव। अतः भवान् महान् भूत्वा राज्यमिदं परिपालयति।

अतः त्रिलोकेऽस्मिन् केचन पदाः श्लेषालङ्कारस्य दर्शनं कारयन्ति। यथा—‘जनत्वकीर्तिः, वाचालता’ ‘पङ्कजवनम्’ ‘शक्रसनाथता’ ‘त्वदावीर्यगुप्तामिमाम्’ ‘द्यौः वञ्चयते’ इत्यादिपदानां अनेकार्थाभिधाने अत्र श्लेषालङ्कारतां प्रमाणयति। अपि चापरः एकः श्लोकः—

निर्भिन्दन्निव नः श्रुतिः प्रतिभयश्चेतांसि मथन्निव।

क्रुद्धस्येव सरित्पतेर्ध्वनिरयं दूरादपि श्रूयते॥

भीमे श्वघ्न इवार्णवस्य नियतत्येतत्समग्रं जलम्।

तत्कोऽसावुधिः किमत्र चापरं कृत्यं भवान् मन्यते॥

श्लोकोऽयं सुपारगजातकतः आगच्छति। अत्र बोधिसत्त्वस्य नौसारथि अवस्थायां वर्णनं दृश्यते। प्रकृतेः स्वभावतः सः समग्रशास्त्रे प्रवीणोऽभवदिति देवाज्ञा आसीत्। महात्मायं ग्रहाणां नक्षत्राणां च गतिं जानाति स्म। नक्षत्राणां गतिज्ञानहेतोः सः सुकालः, तथा दुःकालं सम्यक्तया ज्ञातवान्। मत्स्यस्य, जलस्य वर्णं भूमेः प्रकारं तथा पक्षीणां च कृतिं जानाति स्म। उक्त चार्यशूरेण—

बोधिसत्त्वभूताः किल महासत्त्वः, परमनिपुणः मतिनौसारथिर्बभूव। धर्मता होषा बोधिसत्त्वानां प्रकृतिमेधावित्वाद्यदुता यं यं शास्त्रातिशयं जिज्ञासन्ते, कलाविशेषं वा तस्मिन् अधिकतराः भवन्ति मेधाविनो जगतः। अथ स महात्मा विदितज्योतिर्गतित्वादिगभागे त्वसंमूढमतिः परिविदितनियतागन्तुकोत्पातिकानिमित्तः कालक्रमकुशलो मीनतो वर्णभौमप्रकारशकुनिपर्वतादिनि श्वहे सूपलक्षितसमुद्रदेशः स्मृतिमान् विजिततन्द्रीनिद्रः शीतोष्णवर्षादिपरिखेदसहिष्णुरप्रमादी धृतिमानाहरणापहरणकुशलत्वादीप्तिसतं देशं प्राप्य वणिजमासीत्। तस्य परमसिद्धयात्रत्वात् सुपारग इत्येव नाम बभूव। तदधुषितं च पत्तनं सुपारगमित्येवाख्यातमासीत्, तस्मात् सुपारगमिति, ज्ञायते। सोऽपि मङ्गल समतत्त्वाद् बुद्धत्वेऽपि संयात्रिकैर्यात्रासिद्धिकामैर्वहन मभ्यर्थनसत्कारपुरः समारोप्यते। स्म। अथ कदाचिदभरूकमिति।



अत्रास्मिन् गङ्गाशे श्लेषलङ्कारस्य परिचयं,  
यथा-श्रुतिः प्रतिभयश्चेतांसि मध्वन्निवा<sup>9</sup>

अर्थः—अस्माकं श्रुतिः निभिन्दन्निव मध्वन् इव प्रतिभयश्चेतांसि।

क्रुस्यैव सरित्पतेध्वनिरयं दुरादपि श्रूयते<sup>9</sup>

अर्थात् अस्माकं कर्णगह्वरं तथा हृदयप्रदेशमस्य समुद्रस्य गर्जनं श्रूयते, अपरं च—

भीमे श्वम इवार्णवस्य<sup>10</sup>

निपातत्येत्समग्रं जलम्।

समुद्रस्य जलमिदं महागर्ते इव प्रतीतमस्ति इत्येव प्रतिज्ञायते।

तत्कोऽसावदधिः किमव च परं कृत्यं भवान् मन्यते<sup>11</sup> अर्थात् कृपया भवान् वदतु यदयं समुद्रः कः तथा अत्रभवामनुसारं किं कर्तव्यमुचितमिति। पद्येऽस्मिन् सम्पूर्णोऽर्थः एतद् भवति यदस्माकं कर्णगह्वरं भेदयित्वा हृदयं विदारयित्वा समुद्रस्य गर्जनं दुरादेव श्रूयते। समुद्रस्य जलमिदं महागर्ते पततीति अनुमीयते।

कृपया भवान् आदिशतु यत् अयं समुद्रः कः तथा भवतः विज्ञानानुसारमस्कां किं कर्तव्यम्। किं तावत् परमं कर्तव्यं च भवेत्। पद्येऽस्मिन् केचन पदाः स्वस्मादर्थान् भिन्नमपरमर्थं विज्ञापयति। अतोऽत्र श्लेषलङ्कार इति प्रमाणितं भवति। ते पदाः, यथा—

‘सरित्पतेध्वनिरयं’ ‘निपातत्येत्समुद्रं’ ‘तत्कोऽसावदधिः’ इत्यादि। इदानीमुपमालङ्कारो व्याख्यायते।<sup>12</sup>

साम्यं वाच्यवैधर्म्यं वाक्यैक्ये उपमा द्वयोः॥ एकस्मिन् वाक्ये ‘उपमानम्’ तथा ‘उपमेयम्’ इति पदार्थद्वयस्य वैधर्म्यरहितं वाच्यसादृश्यमुपमा इति कथ्यते।

सा पूर्णा यदि सामान्यधर्मः औपम्यवाचि च।

उपमेयं चोपमानं भवेद् वाच्यम् इयं पुनः॥<sup>13</sup>

साधारणधर्म, उपमावाचकः उपमेयः, उपमानं च, एते सर्वे वाच्यं भवेत्, अर्थाद् व्यङ्ग्यं लक्ष्यं वा न भवेत् चेत्, तदा पूर्णोपमा अलङ्कारः। उपमानस्योपमेयस्य तुल्यतायाः कारण रूप गुणं तथा क्रिया तथा मनोहरत्वस्य सामान्यधर्मः इति कथ्यते।

इव यथा, तुल्य समादि उपमा वाचक शब्दाः कथ्यन्ते साम्यस्थानुयोगी तथा उपमायाः योग्यपदार्थस्य मुखादयः ‘उपमेयः’ तथा साम्यस्य प्रतियोगी उपमानं कथ्यते। इयं पुनः—

श्रौती यथेव वा शब्दा इवार्थो वा वतिर्यदि।

आर्थी तुल्यसमानाद्यास्तुल्यार्थो यत्र वा वतिः॥

यथेववादयः शब्दाः उपमानानन्तरं प्रयुक्तं तुल्यादिपदसाधारणोऽपि श्रुतिमात्रेणोपमानोपमेयगतसादृश लक्षणसम्बन्धं बोधयन्तीति तत्सद्भावे श्रौती उपमा।

एवं तत्र ‘तस्येव’ इत्यनेन इवार्थविहितस्य वतेः उपादानं तुल्यादयस्तु कमलेन तुल्यं मुखम् इत्यादि उपमानमेव ‘कमलं मुखं च तुल्यम्’ इत्यत्र उपमेयोपमानमुभयत्रापि विश्राममायान्ति इत्यर्थो अनुसन्धानादेव साम्यं प्रतिपादयन्तीति तत्सद्भावे आर्थी। एवं तेन तुल्यमित्यादि वतेः उपादानम्। ‘द्वे तद्धिते समासेऽवाक्ये’<sup>14</sup> पूर्वोक्तो श्रौती आर्थी द्वयमपि तद्वितगा, समासा

वाक्यगात्रय एव भेदाः पुनः त्रिधा भवन्ति। इदानीमुपमा व्याख्यायते।

कुशमाली समुद्रोऽमत्यङ्कु इव द्विपः।  
प्रसह्यासह्यत्यसलिलो हरन् हरति नो रतिम्॥15

अपि च—

निभिन्दन्निव न श्रुतिः प्रतिभय श्रेतांसि मथ्न्निव।  
क्रुद्धस्येव सरित्पतेर्ध्वनिरयं इरादपि श्रूयते॥  
भीमे स्वभ्र इवार्णस्य निपत्येतत्समग्रं जलम्।  
तत्कोऽसाबुदधिः किमत्र चापरं कृत्य भवान् मन्यते॥16

अपि च—

अहेतुवादीदी विरूक्षवाशितं लवात्तत्र विशेषलक्षणम्।  
अतो न तानर्हति सोवतुं बुद्ध श्रेत्तदर्थं पराक्रमे सति॥17

अपि च—

सङ्क्षेपण दयामतः स्थिरया पश्यन्ति धर्मं बुधाः।  
को न नामास्ति गुणः स साधुदयितो यो नानुपातोदयाम्॥  
तस्मात्पुत्र इवात्मनीव च दयां नीत्सा प्रकर्षं जने।  
सद्वृत्तेन हरन् मनांसि जगतां राजत्वमुद्भावय॥18

अपि च—

जित्वा दृप्तौ शात्रवमुख्याविव संख्ये,  
रागद्वेषौ चिन्तसमादानबलेन ब्राह्मम्।  
लोकं येऽभिगता भूमय तेषां,  
दैवाणामन्यतमं मां त्वमवेहि॥19

ये श्लोका अत्र प्रस्तुता, तत्र सर्वस्मिन् भागे उपमालङ्कारस्याधिक्यमवलोक्यते। उपमालङ्कारप्रसङ्गे मयोदाहृतः यः प्रथमः श्लोकः, यथा कुशमाली...नोचितम्।

श्लोकस्यास्यार्थः एतादृशो भवति, यथा—अयं कुशमाली नाम समुद्रः अल्पाङ्कुशः गज इव स्वस्य प्रखण्डजलवेगेन अस्मान् वाहयति, अस्माकं समग्रमानदमपहरति। श्लोकेऽस्मिन् समुद्रेण साकं गजस्य तुलना उपमालङ्कारस्य साधारणधर्मो भवति 'गजे अल्पाङ्कुशता' तथा समुद्रे वाहयन क्षमता। अत्र समुद्रस्य तुलनां कविः आर्यशूरः अत्यन्तं प्रभावपूर्णं गजेन कृतवान्। अतोऽत्रोपमालङ्कारः।

उपमालङ्कारे द्वितीये श्लोके सुपारगजातके निर्भिन्द...भवान्मन्यते। उपमालङ्कारः मिलति। अस्य श्लोकस्यार्थो भवति यदस्माकं कर्णगह्वरं विदारयन् अस्माकं हृदयं विदिर्णयन् सागरस्येदं भयङ्करं गर्जनं दूरादेव श्रूयते। समुद्रस्य समग्रं जलप्रदेशं महागते। इति प्रतीयते।

भवान् कृपया कथयतु यदयं समुद्रः कः तथा तस्य कृते अस्माकं किं कर्तव्यम्। श्लोकेऽस्मिन् उपमालङ्कारस्य प्राधान्यमनुभूयते, यथा नः श्रुतिः निर्मिन्दन्निव प्रतिभयश्चेतांसि मथन्निव सरित्पतेः ध्वनिरयं क्रुद्धस्य इस दूरादेव श्रूयते। अत्र समुद्रगर्जनेन साकं त्रुति निर्भिन्दन् पुनः प्रतिभयश्चेतांसि मथ्यान्निव प्रतिभाति। अपि च सरित्पतेः ध्वनिः क्रुद्धस्यैव तुलना उपमालङ्कारं बोधयति श्लोकेऽस्मिन् समुद्रगर्जनस्य ध्वनिर्भवति साधारणधर्मः तस्मादुपमा।

उपमालङ्कारप्रसेद्धे तृतीयः श्लोकः उदाहृतः—

अहेतुवादादिविरूक्षवाशितं.... ।

....पराक्रमे सति ॥

महाबोधिजातकतः संगृहीतः। अत्रास्य श्लोकस्यार्थो भवति यद् अहेतुवादिनः परस्परं विरोधिवचनेन साकं शृगालस्य रावं तुलितम्। अत्र साधारणधर्मो भवति कर्कशता। अपि चाहेतुवादिनं परस्परविरोधिवचनं भवति उपमानम्, तथा शृगालानां रावं भवति उपमेयः। तस्मादत्रोपमा।

अपरे एकस्मिन् श्लोके, यतः विशेषतया रुरुजातकादुदाहृतः। स यथा—

सङ्क्षेपेण दयामताः.... ।

....राजत्वमुद्धावय ॥

अस्यार्थः एतादृशो भवति यथा यतः अतः संक्षेपेण दया धर्मः इति इदं बुद्धिमन्तलः जनान् स्थिरं मतम्। सज्जनानां प्रियः क गुणः यः दयायाः पश्चात् न गच्छति। अतः यथा पुत्रोपरि स्वोपरि तथा अन्येषां जनानां कृते दयां कृत्वा सदाचरणस्य माध्यमेन जनानां मनांसि हत्वा स्वराजत्वं प्रकाशयतु।

श्लोकेऽस्मिन् यथा पुत्रोपरि यथा स्वोपरि तथा अन्येषां जनानामुपरि इति भागे अलङ्कारः साधारणो धर्मः दयाभावः। पुत्रे तथा स्वस्मिन् उपमानभागः, अन्येषु जनेषु उपमेयभागः विद्यते।

## अतोऽत्रोपमालङ्कारः

ब्रह्मजातके उपमालङ्कारस्यैकमुदाहरणमवलोकयन्तु यथा—

जित्वा दृप्तौ शात्रवमुख्याविव संख्ये,

रागद्वेषौ चितसमादानबलेन।

ब्राह्मं लोके येऽभिगता भूमिपतेषां,

दैवानामन्यतमं मां त्वमवेहि॥

श्लोकस्यार्थः एतादृशः भवति, यथा युद्धे द्वौ अभिमानिनौ शत्रू सदृशं रागद्वेषौ चात्मसंयमस्य शक्तेः जित्वा यः व्यक्तिः ब्रह्मलोकं गच्छति भो राजन् तेषु अहमेकोऽस्मीति परिगणयन्तु।

श्लोकेऽस्मिन् उपमालङ्कारस्य लक्षणं परिदर्शनमेतादृशं यद् युद्धे द्विशत्रुणा साकं रागं द्वेषं च तुलना तत्र साधारणो धर्मः जयमुपमानः रागद्वेषौ तथा उपमेयः युद्धस्याभिमानिनौ द्वौ प्रधानौ शत्रू। अतोऽत्रोपमालङ्कारः सदृशस्य भावहेतोः। अन्तिमे उदाहरणे कल्माषपिण्डजातके प्रथमश्लोके—



गुणास्तयाधिकं रेजुदैवसम्पद्भिमुषयाः।  
किरणा इव चन्द्रस्य शरदुन्मीलितश्रियः॥

अस्मिन् श्लोके उपमालङ्कारस्य प्रभावो दृश्यते। अर्थो भवति, यथा—

दैवी सम्पत्तियुक्त विभूषितं च तस्य सदुणः अत्यधिकं शोभितं यथा शरदतौ चन्द्रमसः शोभा अतिशयेन वर्द्धते।

अत्र देवीसम्पत्तियुक्तं भूत्वा राज्ञः सदुणानां विकसनं विद्यते तथा शरदतौ चन्द्रमसः शोभा इति अनयोः मध्ये तुलना उपमालङ्कारः साधारणो धर्मः विशेषोपमानः दैवीगुणसम्पन्नो राजा तथा उपमेयः चन्द्रमसः किरणानि। अतोऽत्रोपमालङ्कारः विराजते।

अनेन प्रतिभाति यद् आर्यशूरेण कृतायां जातकमालायां बहुषु भागेषु उपमालङ्कारस्य वर्णनं सोदाहरणं वर्णितम्। विस्तारभयाद् अन्यानि उदाहरणानि न प्रस्तूयन्ते। उपमालङ्कारस्य सविशेषत्वमसिद्धक्षेपेण यथा—

पूर्णा लुप्ता च।

पूर्णाऽपि द्विविधा

श्रौती आर्थी च।

एते पुनः षड्भेदाः समासगा, तद्धितगा वाक्यगा भेदात्। लुप्ताश्च प्रथमतः अष्टधा, तेऽपि अष्टौ अष्टादशभागेन विभक्ताः।

प्रारम्भिकभागे लुप्तायाः भेदाः, यथा—धर्मलोपे, उपमानलोपे, वाचकलोपे, धर्मोपमानलोपे, उपमानोपमेयोः लोपे धर्मोपमानवाचकानां लोपे धर्मोपमानवाचकानां लोपे चेति। अपरेऽपि केचन साधारणालङ्कार यथा एकदेश विवर्तव्यापि उपमारसनोपमा, मालोपमा, अनन्वय उपेयोपमा आदि अलङ्काराः उपमालङ्कारस्य भेदरूपेण विद्यन्ते। तदभिन्न अपि अलङ्काराः सन्तिः तेषां जातकमालया सांक विवेचना विषयस्य संक्षेपहेतोः तेषां वर्णना मया न संयोजिताः।

परन्तु बहुसंख्यकानि अलङ्काराणि सन्ति तेषां वर्णनं न्यूनमालोचनीयं प्रतिभाति।

येऽलङ्काराः मूर्धन्यभूताः, ते सन्ति—दीपकः अपहृति, यमकम्, परिकरः, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्तः, निदर्शना, प्रतिवस्तूपमा, व्यतिरेकः, स्मरणम्, परिणामः सन्देहः। भ्रान्तिमान्, उल्लेखः निश्चयः अतिशयोक्तिः, तुल्ययोगिता, सहोक्तिः, समासोक्तिः, व्याजस्तुतिः, अर्थान्तरन्यासः, आक्षेपः, विभावना, विरोधः, असङ्गतिः, विषयम्। समविचित्रम्, अधिकम्, अन्योन्यम्, विशेषः यथा—संख्यम् पर्यायपरिवृत्तिः, परिसंख्या, अर्थापत्तिः, विकल्पः, समुच्चयः, संसृष्टि, सङ्करश्चेत्यादि।

## सन्दर्भ

1. जातकमाला, आर्यशूर (मोटिलाल बनारसीदास प्रकाशन)
2. साहित्यदर्पणे, विश्वनाथः, दशमपरिच्छेदे, श्लोकक्रमाङ्कः 22
3. तत्र द्वितीयपादः।
4. साहित्यदर्पणे दशमपरिच्छेद प्रथमपादः श्लोकक्रमाङ्कः 121
5. जातकमाला, आर्यशूरः, मैत्रीबलजातकम् श्लोकक्रमाङ्कः 491
6. वही, 49
7. जातकमाला, आर्यशूरः सुपारगजातकम् श्लोकक्रमाङ्कः 22
8. जातकमाला, सुपारगजातकम्, प्रथमपादः, 22



## 488 संस्कृत के बहुआयामी पक्ष

9. वही, द्वितीयपादः, 22
10. वही, तृतीयपादः, 22
11. वही, चतुर्थपादः 22
12. विश्वनाथः साहित्यदर्पणम्, 14
13. दशमपरिच्छेद साहित्यदर्पणम् 15
14. श्लोकांशः साहित्यदर्पणस्य
15. जातकमाला, सुपारगजातके, 22
16. तत्रेव, महाबोधिजातकम्, 6
17. जातकमाला, रुरुजातकम् 44
18. वही
19. जातकमाला, आर्षभूः, ब्रह्मजातकम् 4
20. जातकमाला, कुल्माषपिण्डजातकम् 2